# नुष्य बनो

انسان بنو

## मानवता के मुख्य नियम

संस्थापक

## । फकीर चन्द जी महाराज

ता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

# —विषय-तालिका—


| सं० | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | —हमारी बात | ... | २ |
| २ | —प्रार्थना | ... | ३ |
| ३ | —उचित व्यवसाय का चुनाव | महर्षि जी | ५ |
| ४ | —टूर पर अपने एकान्त में | फ़क़ीर साहब | ६ |
| ५ | —ईश्वर के अनेक रूप | महर्षि जी | १३ |
| ६ | —दातादयाल जी का पत्र भगवती देवी के नाम | | १८ |
| ७ | —ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब | ... | १६ |
| ८ | —द० म० शिवव्रतलाल महाराज का वार्षिक महोत्सव बनारस में | | १६ |
| ६ | —भाई भाई की बातचीत | फ़क़ीर साहब | २४ |
| १० | —प० द० फ़क़ीर साहब जी महाराज का प्रवचन अलीगढ़ १८-२-५८ | | २६ |
| ११ | —स्वास्थ्य बिगड़ने का मुख्य कारण | | ३६ |
| १२ | —मेरा भ्रमण या यात्रा | फ़क़ीर साहब | ४० |
| १३ | —शब्द | ... | ४२ |
| १४ | —दातादयाल की होली | ... | ४२ |
| १५ | —नन्दूभाई जी की साखी | ... | ४३ |
| १६ | —गुरू का सन्देशा | ... | ४३ |

# हमारी बात

हमें बस इतना कहना है कि कुछ ग्राहक बनाओ तुम।
यही है गुरू की सेवा खुद पढ़ो औरों को पढ़ाओ तुम॥

जो वार्षिक मूल्य ही नहीं भेजते वह ग्राहक ही क्या बनायेंगे यह अपील हमारी उनसे है जिनका वार्षिक मूल्य प्राप्त हो चुका है अब हमको झूँठी बात बनाना आता नहीं और बिना बात बनाये कोई अपने आप पैसा देता नहीं। हम प्रतिमास यही पुकार करते चले आ रहे हैं कि मनुष्य बनो का वार्षिक मूल्य भेजिये। किन्तु खेद है कि अभी तक रुपये में आठ आने की प्राप्ती हुई है। क्या यह दशा अच्छी है? चूँकि मन से अच्छे और बुरे का विचार हट गया है। इसलिए इस कार्य को हम बड़े प्रेम पूर्वक कर रहे हैं। प्रसन्नता, प्रेम और सचाई से कार्य तो हमारा चल जाता है। परन्तु जिस सीमा तक हम इसे पहुँचाना चाहते हैं उसमें बाधा पड़ती है। धन का कार्य धन से ही चलता है। काग़ज़ की मंहगाई, पोस्टेज की बढ़ोतरी यह सब ऐसी बातें हैं जिनसे हमारी लागत आज कल ड्योढ़ी आरही है। पत्रिका के पृष्ठों को हम कम करना चाहते नहीं। जो मैटर आ जाता है प्रतिमास छाप देते हैं। इस पर भी हमारे प्रेमी पाठक यदि हमारी अपील पर ध्यान न दें तो अत्यन्त शोक है। और सहायता किसी प्रकार की माँगते नहीं। हम उनसे केवल दो दो नवीन ग्राहक चाहते हैं। यदि वह चाहें तो बड़ी सुगमता से ऐसा कर सकते

( शेष पृष्ठ ४ पर पढ़िये )

R. S.

# मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्ण मुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ६ | चैत्र सम्वत् २०१५ मार्च १९५८ | सं० ६-६६

मैं आई सतगुरु की शरनी, नर जन्म सुफल भया अब सजनी ॥
नहिं सुख वाद विवाद में, पक्षपात सुख नाँहि ।
द्वेष ईर्षा सुख कहाँ, सुख भक्ति के माँहि ॥
तज सबको करूँ प्रेम करनी । मैं आई सतगुरु की शरनी ॥
ग्रन्थी ग्रन्थन की खुली, पच पच मरी पढ़ ग्रन्थ ।
गुरु मिले शीतल भई, लख सत पद का पन्थ ॥
नहीं भूल करूँ कथनी बदनी । मैं आई सतगुरु की शरनी ॥
भाग जगा सोया मेरा, दया करी गुरु देव ।
सबकी आशा त्याग कर, मेटा मन का भेव ॥
क्यों मृत्युलोक में नित मरनी । मैं आई सतगुरु की शरनी ॥
अवश्य मेव भुक्तव्यम, कृत कर्म शुभा शुभम् ।
गुरु चरनम् नमतव्यम्, सतगुरन् सर्वम् परम् ॥
जैसी करनी वैसी भरनी । मैं आई सतगुरु की शरनी ॥
विज्ञानम् सत प्रसादेन, गुरुबिन शब्द न कथ्यते ।
जपस्तपोवर्तम तार्थम, बिन गुरु पद न लभ्यते ॥
राधास्वामी नाम सदा भजनी । मैं आई सतगुरु की शरनी ॥

( शेष पृष्ठ २ का )

हैं। परन्तु इधर ध्यान देने का किसी को अवकाश ही नहीं प्रतीत होता है। वरन् सब कुछ हो सकता है।

आगे धन्धा पीछे धन्धा जित देखो तित धन्धा।
धन्धे ऊपर ध्यान लगावे सो साहब का बन्दा॥

तनिक ध्यान देने की बात है और कार्य बना बनाया है। ध्यान देना है तो दीजिये और देखिये कि ध्यान से ही सब कुछ हो सकता है। और आगे किस प्रकार आपकी सेवा हो सकती है। हम यह सेवा अपने ही लिए कर रहे हैं। हम प्रसन्न तो हमारा दाता प्रसन्न। हमारी भलाई में सब की भलाई है। आप भले तो जग भला, आप बुरे तो जग बुरा। इस भलाई में हम आपको भी सम्मिलित करना चाहते हैं।

बांट के खाना भक्ती है। खुद खाना कम्बख़्ती है।

इसमें हमारी कोई ख़ुद ग़र्ज़ी नहीं है। बेग़र्ज़ी है। यदि आप चाहें तो हम में सम्मिलित होकर हमारा हाथ बटा सकते हैं और यश के भागी बन सकते हैं। यदि न चाहें तो कोई ज़ोर ज़बर दस्ती नहीं। प्रेम का सौदा है। हो सके तो गुरू की शिक्षा को अवश्य फैलाओ। मालिक सब का भला करें। गुरू सबका कल्याण करें।

# उचित व्यवसाय का चुनाव

## ( मनो नियम से )

[ लेखक—श्री महर्षि जी महाराज ]

क्या मैं स्वभावतः सफलता प्राप्त करने के योग्य बनाया गया हूँ ? यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसका उत्तर बहुत से स्त्री पुरुषों के जीवनों में नहीं दिया जा सका। बहुत से मनुष्य उचित व्यवसाय अथवा काम काज के आरम्भ करने के इच्छुक तो रहते हैं परन्तु इस भय से कि उन्हें उस कार्य में हानि न उठानी पड़े, किसी कार्य को हाथ नहीं लगा सकते। परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य को पृथक-पृथक कार्यों के लिये उत्पन्न किया है। मनुष्य इस संसार में यों ही बिना किसी उद्देश्य के नहीं उत्पन्न किया गया। प्रकृति किसी कार्य को वृथा नहीं करती। यदि प्रत्येक अस्तित्व का कोई न कोई उद्देश्य है तो प्रकृति ने कोई न कोई ऐसे उपाय अवश्य रक्खे होंगे जिनकी सहायता से उसको उस उद्देश्य का पता मिल जाय। जब तक मनुष्य को मनो-नियम का पता नहीं मिला था तब तक यह भेद भी मनुष्य को नहीं ज्ञात हुआ था किन्तु अब मनोनियम की सहायता से वह इसे सहज में जान लेता है।

यदि संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने स्वभाव, योग्यता और समझ बूझ के अनुसार अपनी आयु के कार्य में उचित रूप से लग जाता तो उसके काम काज में कैसी कुछ सुगमताएँ रहतीं। यह बेचैनी और हलचल जो दिखाई देती है सब मिट जाती। वर्तमान काल में प्रत्येक प्राणी अपनी आयु का बहुत सा भाग यों ही नष्ट कर रहा है। उसकी आधी आयु इसी बात के जानने में व्यय हो जाती है कि संसार में उसकी क्या स्थिति है और किस कार्य के लिए वह उत्पन्न किया गया है? यह खोज बहुत

अधिक समय ले लेती है। अनेक व्यक्ति तो साहस हीन बन जाते हैं, और आत्मघात कर बैठते हैं। हम देखते हैं कि सर्वत्र अनुचित और निकम्मे व्यवसायों में व्यक्तियों की योग्यता अकार्थ चली जा रही है। जिस कार्य को आत्मा प्रिय नहीं समझता वरन् घृणा करता है उसमें वरवश प्रवृत्त होना अपने लिये मृत्यु को शीघ्र आने का संदेश देना है। वह कार्य जीवन को दुःचल डालता है। साहस और अभिलाषा के पद दलित करने के लिए अप्रिय कार्य से बढ़कर और कोई वस्तु नहीं है। हम देखते हैं कि जिस नवयुवक में आवश्यक योग्यता नहीं है, वह वकील बनने जा रहा है किन्तु वह कारीगर बनने में अधिक अच्छा रहता। एक व्यक्ति जिसके गाने बजाने की रुचि है वह लिखने पढ़ने के कार्य में लगा है। इत्यादि इत्यादि ! माता-पिता अपनी अज्ञानता के कारण अपनी संतान को इस प्रकार अनुचित व्यवसायों में फँसाते हैं और उनके जीवनों को नष्ट करते हैं। वह किंचित विचार नहीं करते कि इनकी स्वाभाविक रुचि क्या है ! माता-पिता इस प्रकार नियम भङ्ग के दोषी बनते हैं तो महा भूल कर बैठते हैं। उनकी मूर्खता से उनके बच्चों का समस्त जीवन नष्ट हो जाता है। अब मनोनियम ने यह भेद प्रकट कर दिया है जिससे प्रत्येक प्राणी अपने लिए उचित और व्यवसाय चुन सकता है। उससे कहो कि तुरन्त जीवन के मार्ग पर चलना आरम्भ कर दे और उसको प्रसिद्धता तथा सफलता दोनों प्राप्त होंगी। जिन स्त्री-पुरुषों को इस बात के जानने की इच्छा हो कि उनमें किस प्रकार की योग्यता है वह सोच-विचार कर निम्न लिखित प्रश्नों के स्वयं उत्तर दें।

क्या यदि अवसर मिलता तो तुम अपने लिये विशेष प्रकार का व्यवसाय नियत करते ? क्या कभी तुमको किसी विशेष प्रकार के व्यवसाय या विशेष प्रकार के कार्यों में प्रविष्ट होने की इच्छा

हुई है ? क्या कभी तुमको किसी कार्य में यश और प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा हुई है ? क्या कभी तुमको ऐसा अनुभव हुआ है कि अमुक कार्य करने में तुमको हर्ष प्राप्त होगा। यदि तुमको इनमें से किसी प्रकार का भी अनुभव हुआ है तो तुमको अपनी स्वाभाविक योग्यता और व्यवसाय चुनने का ज्ञान कभी हो चुका था। यह विचार सदैव तुम्हारे हृदय में बार-बार उत्पन्न होते रहेंगे और तुम्हारी इच्छा रहा करेगी कि इस प्रकार कार्य करना चाहिये, और यह इच्छा तुम्हारी सच्ची पथ-प्रदर्शक है जिसका तुम्हें प्रयत्न करना चाहिए। यदि परमात्मा को यह स्वीकार न होता कि वह तुम्हें उपदेश करें तो वह इस प्रकार रह रह कर तुम्हारे हृदय में चुटकियां न लेतीं। यह विचार यों ही अकारण तुम्हारे हृदय में उत्पन्न नहीं हुए। इनकी जड़ में एक नियम छिपा हुआ है, जो इनको उभाड़ता रहता है। क्या कभी तुम ऐसे कार्य में सफल हो सकते हो जिसको तुम अप्रिय समझते हो ? नहीं, क्योंकि तुम्हारे समस्त विचार और समस्त शक्ति उस कार्य में कभी प्रविष्ट नहीं होते और तुम केवल अर्द्धमन से उसमें लगे रहते हो।

कतिपय मनुष्य प्रश्न करेंगे कि यह विचार अथवा भाव क्या है ? और हम इन पर क्यों ध्यान दें ? इसका उत्तर यह है कि यह मानसिक सँदेशे हैं जो तुम में सच्ची सहानुभूति रखने वाले भेजते रहते हैं और परस्पर मस्तिष्क की एकता के कारण से उनके विचार तुम्हारी ओर खिंचे चले आते हैं। यह उन पुरुषों के संदेशे हैं जो तुमको सफल होने के लिए सहायता देंगे। इन सँदेशों का निरादर न करो और न इनमें असावधानी होने पावे। अपने आस पास देखो। माता पिता ने कठोरता करके कितने बच्चों के जीवनों को निकम्मा बना दिया। सहस्रों व्यक्ति ऐसे निकलेंगे कि जिनका जीवन व्यर्थ प्रमाणित हुआ। उन्होंने अपने

जीवन को सफल बनाने में बहुतेरा उद्योग किया परन्तु परिणाम असफल ही रहा। निदान क्यों ऐसा हुआ ? क्योंकि स्वाभाविक रूप से इनमें इस कार्य के लिए योग्यता नहीं थी। असफल होने के पीछे कुछ ने अपनी हार्दिक रुचि के अनुसार कार्य आरम्भ किया और सफलता प्राप्त करली। जिस समय मनुष्य को ज्ञान हो जाय कि वह अपनी हार्दिक रुचि के अनुसार कार्य नहीं कर रहा तो उसको तुरन्त अपने काम काज की ओर दूसरी ओर मोड़ देना चाहिए। यदि मनोनियम के अनुसार दूसरों से सहायता लेता रहेगा तो उसको अवश्य सफलता प्राप्त हो जायगी।

यदि कोई मनुष्य अनेक कार्यों के बीच में पड़ जाने से फैसला नहीं कर सकता, तो उसको कुछ दिनों एकान्त में रहकर एकाग्रता का साधन करना चाहिए। उस समय जो जो हार्दिक उपदेश उसको मिलें उन पर वह साधन करे। उस समय वह उचित निर्णय कर सकेगा, जिस समय उसको और उचित कार्य हाथ आ जाय तो उसको चाहिए कि अपने समस्त बल-वेग के साथ उसमें प्रवृत्त हो जाय और प्रत्येक दिन मन में कहा करे "मैं सफल हूँगा, मैं प्रतिष्ठा का पात्र बनूँगा।" हमारी सफलता वास्तव में हमारे विचारों का फल है, यदि हमारे भाव बुरे और निकम्मे हैं तो सफलता भी वैसी ही होगी। जो व्यक्ति संसार में निर्मल हृदय तथा मस्तिष्क वाले समझे गये हैं वह अपनी एकाग्रता और किसी विशेष कार्य की योग्यता रखने के लिये प्रसिद्ध थे, क्योंकि उन्होंने एक कार्य में सर्वथा तन मन से प्रवृत्त होकर अपनी समस्त शक्तियां उसमें लगा रक्खी थीं। और उनको उसमें असाधारण सफलता प्राप्त हो गई। वह मनुष्य सौभाग्यवान है जो केवल एक कार्य में अपने तन, मन को लगा देता है। और उसी को अपने जीवन का केन्द्र बना लेता है। सफलता केवल इसी प्रकार प्राप्त होती है। इस सफलता के लिए प्रबल इच्छा शक्ति के उत्पन्न करने और

सम्पूर्ण शक्तियों को उस पर लगा देने की आवश्यकता है। यदि हमारे पाठकों में से किसी की इच्छा-शक्ति दुर्बल है तो उसको गत अध्ययन के आदेशों पर साधन और अभ्यास करना चाहिए, उसके पालन से प्रबल इच्छा-शक्ति उत्पन्न होगी। और उसको स्वयं अनुभव होगा कि मुझमें एक नूतन शक्ति आ गई है। यदि एकाग्रता की शक्ति दुर्बल है तो वह एकाग्रव्रती होने का अभ्यास करे। जो मनुष्य अपनी उन्नति के लिए एक घंटा भी व्यय करेगा उसको सहस्रों गुना लाभ पहुँचता रहेगा। एकाग्रता की शक्ति योग के साधनों से सहज में प्राप्त हो जाती है। योग के अभ्यासियों की मानसिक शक्ति उनके हाथ में होती है। देखो हमारी रचित योग की पुस्तक।

## दूर पर अपने एकान्त में

( ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब )

आज अकेले अपने घर में बैठकर अपने जीवन की खटपट पर ध्यान दिया। लोग कहते हैं कि बाहर संसार में खटपट रहती है किन्तु यह खटपट मनुष्य के भीतर भी रहती है। इस काया में अनेक प्रकार की सृष्टि हैं, अनेक प्रकार के दृश्य हैं। मन की विभिन्न वृतियों की आपस में टक्कर होती रहती है और मेल मिलाप भी होता रहता है। जीवन पहिले बाहरी खटपट से घबराया, अन्तरीय खटपट का अनुभव हुआ। आनन्द, निरानन्द, खुशी, ग़मी व अन्य प्रकार के बोध भान का खेल खेला। तबीयत वहां से घबराई। क्या कोई छुटकारा है जो इस बाहरी और अन्तरीय खटपट से मुक्ति मिले। हां,

लौट चल अपने घर को, जहां न मन न इन्द्री का खेला।
न वहां दो न तीन है, न वहां सहस्र का खेला॥

नहीं वहां प्रकाश न शब्द की कोई निशानी।
नहीं वहां आदि अन्त की है कोई गुमानी॥
नहीं वहां अकाल दयाल और न कोई है गैरा।
एक तत्व प्रधान है जहां न मेरा तेरा॥
सुरत नहीं वहां निरत नहीं, न वहां अभ्यासा।
वही है निज धाम जहां नहीं कोई कलेशा॥

यह ठीक है किन्तु इस अवस्था से मेरा अस्तित्व, अर्थात् सुरत मन और शरीर क्यों बने।

प्रश्न—क्यों बनी थी सुरत मन और देहा।
कारण उसका क्या था क्या है भेदा॥

उत्तर—वह आप आप ही आप ही आया।
अपने आपको उसने सुरत मन देह बनाया॥
आप दुखी हुआ आपको उस आप चिताया।
अपने आप में आप था फिर आप रहाया॥

यह जीवन का अनुभव है किन्तु मेरा प्रश्न यह है कि वह अपनी ज़ात एक है या अनेक है। यदि वह एक है तो वह सबका आधार है। यदि एक मनुष्य भी अपने स्वरूप में लय हो जाय तो समस्त संसार को वापिस लय हो जाना चाहिये किन्तु ऐसा नहीं होता है। यह सोचने की बात है। मैं अपनी भावनाओं में अपने निज घर को वापिस जाना चाहता रहा हूँ। एक बार मैं दातादयाल के दरबार में गया। वहाँ मैंने अपना भाव एक भजन में साधारण सत्सङ्ग में प्रगट किया आपने कहा कि फ़क़ीर संसार को मिटाना चाहता हूँ। उस समय मैं उनकी बात को समझ न सका। समस्त जीवन मैंने अन्तरीय साधन में व्यतीत किया। और अब इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि सुरत (आत्मा) मन और शारीरिक बोध भान सबके सब क्षोभ के क्रम में बनते और बिगड़ते हैं। चूँकि आत्मा (सुरत) निरत होकर अपनी सत्ता

खो देती है इसलिये उस मालिक या स्वरूप को अनाम कह दिया है। यह नहीं कि वह अनाम है। उसका भेद न किसी ने पाया न पा सका। जितनी जिसने खोज की वह अपना अनुभव बता गया। मैंने जो समझा है वह यह है कि हम सब जीवन रूपी बुलबुला हैं शारीरिक ढङ्ग से भी, मानसिक ढङ्ग से भी और आत्मिक ढङ्ग से भी। इस भेद को समझने के पश्चात् मनुष्य इस संसार में जब तक जीवित है निर्भ्रान्त, शान्त और प्रसन्न रहता हुआ जीवन व्यतीत करे और दूसरों पर अपना धार्मिक विचार या अन्य दवाब न डालता हुआ जीये और जीने दे। यही मनुष्यता है। जीवन क्या है ? लव ( होठ ) खुले और बन्द हुए। इस रचना में या ऊपर के लोकों में भिन्न २ प्रकार की रचना होती है। जीव-जन्तु मनुष्य आदि बनते और बिगड़ते रहते हैं। इस अनुभव के होने पर मनुष्य निर्बैर निर्भय और अडोल हो जाता है। यह गुरु नानक की खोज का परिणाम है। उस मालिक का अन्त नहीं है। इसकी थाह न कोई पा सका न पायेगा। अन्त में सबको मौन होना पड़ा।

अपने उरझे उरझियां उरझे सब संसार।
अपने सुरझे सुरझियां, यह गुरु ज्ञान विचार॥

पूर्ण पुरुष इस संसार में मनुष्य की शङ्काओं और भ्रमों को दूर करने आते हैं। जिन्होंने सत्संग चैतन्य होकर किया वह निर्द्वन्द हो गये।

चूँकि मेरा कर्मभोग था कि जो कुछ अनुभव मुझे इस मार्ग पर चलने से होगा वह बता जाऊँगा, इसलिए विवश होकर मौज ने कार्य करा लिया। मैं भिन्न २ ढङ्गों से मानव जीवन की उन्नति के लिए अपना अनुभव वर्णन कर चला।

## किसी के काम आओ।

खुश होकर ( प्रसन्न चित्त ) होकर काम करो। निर्भय

रहो, अभय रहो। यह मेरा संदेश है। धर्म, सम्प्रदाय और पंथों के पक्षपात से बचो। जीओ और जीने दो। मैंने कर देखा तुम कर देखो। अपने अनुभव की पुष्टि में दातादयाल का एक पत्र जो पं० मामचन्द के नाम है लिखता हूँ। पढ़ो।

—००—

आश कर गुरु की दया की हो निराश न तू कभी।
जो निराश हुआ समझ ले गुरु का दास न तू कभी॥

एक चुप सौ बला टालती है। इस कान से सुना उससे निकाल दिया। अपने मतलब से मतलब।

दिन को दफ्तर उसका काम।
रात को सोने का आराम॥
फुर्सत मिली तो गुरु का नाम।
फिकर तर्दुद सब बे काम॥

दिल देता है बातों को। बातों से सहता लातों को॥
बातों से जूती पैजार। बात न सुने रहे हुशियार॥
किसी की बात से गुस्सा आया।
समझलो है माया का साया॥
नाम लिया और माया गई।
नूर आया और छाया गई॥
दिल में लगा बात का तीर।
चोट लगी और व्यापी पीर॥
बात बात है बात से बात।
बात समझलो सूखा पात॥
हवा बही पत्ता ढिग आया।
आई हवा और उसे उड़ाया॥
आई गई नहीं निशान।

कहां है इसका ठौर ठिकान ॥
अन्तर व्याप रहे गुरु देव ।
करो निरंतर उनकी सेव ॥
सुमिरन ध्यान भजन की रीति ।
अन्तर रहे प्रेम परतीत ॥
सुख आये और सब कटे मोह मया भ्रम जाल ।
मामचन्द गुरु को भजो कभी न व्यापे काल ॥

जिनके मन चंचल हैं वह इस रहस्य को नहीं समझ सकते हैं। इसलिए साधन उनके लिए आवश्यक है। फिर वह इस रहस्य को किसी तत्व ज्ञाता व तत्व दर्शी से समझ सकेंगे पहले नहीं।

—००—

# ईश्वर के अनेक रूप

( ले० दातादयाल महर्षि जी महाराज )

ईश्वर ने मनुष्य को बनाकर उसे बुद्धि, ज्ञान और विवेक दिया। प्रत्येक बात की समझ बूझ प्रदान की। उसे नाम और रूप की समझ आई। उसने सब कुछ जान लिया नहीं जाना तो केवल ईश्वर को नहीं जाना। उसने उसे अपने चारों ओर चलते फिरते उठते-बैठते देखा भी, परन्तु पहिंचाना नहीं। रात दिन ईश्वर ईश्वर करने लगा। बात चीत में ईश्वर ! लेन देन में ईश्वर ! सौगन्द खाते समय ईश्वर ! यह सब कुछ था पर उसे खुली आँखों से ईश्वर का दर्शन नहीं मिला। तीर्थ गया, मूर्ति पूजी, मन्दिरों की परिक्रमा की, वेद पढ़े, योग का साधन किया, जप तप सब कुछ किया, आयु भी बहुत बीत गई, पर ईश्वर नहीं मिला। बातों बातों में वह कह भी देता था कि, 'सब कुछ मैंने किया और करता रहता हूँ, ईश्वर मुझे नहीं मिलता। समझ में नहीं आता

अब क्या उपाय करूँ कि वह मुझे मिले।'

ईश्वर उसकी बातों को सुन सुनकर हँसता और कहता कि 'यह मूर्ख मुझे देखता है और पहँचानता नहीं ( समझ भी रखता है और जानता नहीं ) मैं इसे कैसे बताऊँ कि मैं कौन हूँ और कहाँ रहता हूँ ? इसके मन में भ्रम बसता है। यह बताने पर भी मुझे न जानेगा। अच्छा ! आज प्रातःकाल से संध्या समय तक इसे दर्शन देता रहूँगा, देखूँ अब भी यह मुझे देखता है कि नहीं। यदि इसने इस पर भी न समझा तो मूर्ख और अज्ञानी तो यह अवश्य है परन्तु प्रेमी है। उसके प्रेम का आदर सत्कार करके मैं इससे मिलूँगा और अपना दर्शन देकर नर स्वरूप में बातचीत करूँगा, तब तो यह अवश्य ही मुझे मान जायगा, जान जायगा और पहँचान जायगा।

यह मन में सोचकर वह चुप हो रहा।

उस दिन सूर्य निकलने से सूर्य डूबने तक मनुष्य की दृष्टि में अनेक आश्चर्य जनक घटनाएँ आईं। मनुष्य ने सबको अपनी आँखों से देखा और चकित हुआ, परन्तु उसमें उसे ईश्वर का दर्शन नहीं हुआ।

रात हुई जाड़े का दिन था। सब व्यक्ति आग पर तापने के लिए बैठे थे। वह मनुष्य भी उनके बीच में था। सब व्यक्ति बैठे हुए दिन की बातों की चर्चा करने लगे। संयोग की बात एक अन्य पुरुष भी वहाँ उनके साथ आकर बैठ गया।

मनुष्य कहने लगा—"आज की बातें तो ऐसी विचित्र हुई हैं कि जो समझ में नहीं आतीं। कोई क्या समझे और क्या न समझे।"

यह नया पुरुष पूछ बैठा, "मुझे भी सुनाओ मैं भी तो सुनूँ।"

उस मनुष्य ने कहा, "कोठे पर से एक लड़का गिर पड़ा।

ज्यों ही वह धम से गिरा, नीचे दो तीन गायें अकस्मात आगईं। वह उनकी पीठ पर गिरा। थोड़ी सी चोट आई। जो कहीं वह न आगई होतीं तो वह अवश्य मर गया होता। क्योंकि गिरने का स्थान पथरीला था, सब हड्डी पसली चूर हो गई होतीं। क्या यह विचित्र और अनोखी बात नहीं थी।"

पुरुष बोला, "वह गायें नहीं थीं। गायों के रूप में ईश्वर आप उस नन्हे बालक को बचाने आया था।"

मनुष्य ने कहा, "दूसरी बात यह हुई कि गाँव के एक घर में आग लगी। कोठे पर एक सुकुमारी सो गई थी। और सब प्राणी तो किसी न किसी विधि से निकल आये थे परन्तु सोई हुई लड़की न निकल सकी। जब आग प्रचंड हुई तो उसकी आँखें खुलीं। पर वह न तो सीढ़ियों से नीचे उतर सकती थी और न ऊपर से कूद ही सकती थी। उसके जल-मरने में कोई सन्देह नहीं था। उसी समय एक परदेशी आया। परदेशी क्या था? दया का रूप था। दया ही देह धारण कर आगई थी। उसने झटपट खिड़की से बाँस की सीढ़ी लगाई। अपनी जान पर खेल कर ऊपर चढ़ा। लड़की को अपनी कमर से बाँधा और सबके देखते देखते उतार लाया। वह अनेक जगह स्वयम् जल भी गया, परन्तु लड़की को बाल बाल बचा लाया। उस घर आँच तक न आने पाई और फिर वह अपनी राह चला गया।"

पुरुष बोल उठा, "वह परदेशी नहीं था। साक्षात् ईश्वर था। और क्या बात हुई।"

मनुष्य ने कहा, "तीसरी बात यह हुई कि एक सर्प ने एक वृद्धा स्त्री का मार्ग रोक रक्खा था और वह अवश्य काट खाता। एक बिल्ली झपटी। अपना पंजा उसके फन पर मारा। साँप ने बुढ़िया को तो छोड़ दिया, वह भाग गई। बिल्ली से भिड़ गया और उसे फन से घायल करना चाहा। जब यह फण उठाता,

बिल्ली उछल कर पंजे से उस पर वार करती। थोड़ी देर तक लड़ाई रही। साँप उल्टा घायल होकर छुप रहा। तब जाकर बिल्ली ने उसे छोड़ा।"

पुरुष हँसा, "वह बिल्ली नहीं थी, ईश्वर था जो लोक परलोक का समय समय पर सहायक हुआ करता है। और क्या हुआ ?"

मनुष्य ने कहा, "इसी प्रकार की एक और बात यह हुई कि भूख प्यास का मारा हुआ एक अहीर का बालक धूप में पड़ा हुआ था और उसके सिर पर एक कौड़ियाला नाग फण फैलाये हुए छाया कर रहा था।"

पुरुष बोला, "भाई ! वह भी ईश्वर ही था। तू बड़ा भाग्यवान है कि आज कई रूपों में ईश्वर का तूने दर्शन कर लिया।"

वह बोला, "ईश्वर ! तू सबको ईश्वर ही बताता है। गाय, मनुष्य, बिल्ली, सर्प सब ही तेरी दृष्टि में ईश्वर हैं।"

इसने कहा, "ईश्वर नहीं तो और क्या ! उसके एक दो रूप थोड़ा ही है। उसके अगणित नाम और अगणित रूप हैं। वह इसी प्रकार अपने प्रेमियों को नाना भाँति से दर्शन देने आया करता है।"

मनुष्य सोचने लगा और यह पुरुष आग तापने के पीछे वहाँ से उठ कर चल खड़ा हुआ।

यह पुरुष स्वयं ईश्वर था। जो ईश्वर का भेद बतावे वही तो ईश्वर होता है। दूसरा उसका भेद कैसे जान सकता है। उस तक तो मन और वाणी की भी पहुँच नहीं है।

ईश्वर को सोच हुआ, "मैं अपने इस मूर्ख प्रेमी को सब प्रकार से समझा चुका परन्तु इसने इस पर भी मुझे नहीं पहिचाना। अब क्या करूँ कि वह मुझे जाने।"

तब ईश्वर ने मनुष्य के रूप में गुरू का भेष बनाया। उसके गाँव में गया। संशयात्मक मनुष्य पहिले तो उसकी ओर नहीं झुका। जब कुछ दिनों तक सतसंग किया तो उसे गुरू धारण किया। तब उसने गुरू के रूप में ईश्वर का दर्शन किया और कृत कृत्य होगया। परमसंत कबीर साहब ने सच कहा है:—

जा खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधवा, कर सतगुरु सेवा॥
गुरू बतावें साध को, साध कहैं गुरु पूज।
सैन बैन के बीच में, भई अगम की सूझ॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलें, तब भी सस्ता जान॥
कोटिन चंदा ऊगवें, सूरज कोटि हज़ार।
सतगुरु मिलिया बाहिरा, दीसै घोर अँधियार॥
गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन गोविन्द दिया लखाय॥

## शब्द

गुरु के मत में आके गुरु गम, पंथ को पहिंचान ले।
गुरु की संगत करके गुरु का, मर्म ले और ज्ञान ले॥
गुरु हैं ब्रह्मा, गुरु हैं विष्णु, गुरू हैं शिव की मूर्ती।
ब्रह्म हैं परब्रह्म गुरु हैं, गुरु से गुरु को जान ले॥
गुरू मिले सब कुछ मिला, अब किसकी मन में चाह हो।
अर्थ धर्म और मोक्ष की, और कामना की खान ले॥
ज्ञान, भक्ति दोनों गुरु के, आसरे हैं यह समझ।
गुरु दया से दोनों पाले, जीते जी निर्वाण ले॥
राधास्वामी संत सतगुरु, रूप में प्रकटे यहाँ।
ले शरण अब पद कमल में झुक के मेरी मान ले॥

## दातादयाल जी का एक पत्र बहिन भगवतीदेवी के नाम

तीसरे और चौथे स्थान का उपदेश जाता है। कम से कम एक मास तक बराबर अभ्यास रहे।

जब तक अनुभव न बढ़ जाय और अपनी आँखों न देखलो साक्षात्कार के बिना न 'मेरा तुमको विश्वास न तुम्हारा मुझे विश्वास।

जब तक जीवन क्रियात्मक न होले और दशा न बदले उस समय तक कहने सुनने से कोई लाभ नहीं है।

जीवन बनाओ बिगड़ने न पाये। मैंने अपना संस्कार तुमको दिया। यह गया, फिर बाधा पड़ेगी यद्यपि वह सदैव के लिए जा नहीं सकता।

मैं धर्मशाला में ठहरा हूँ। सहस्रों वृक्ष लगा चुका हूँ। स्वास्थ्य अच्छा हो चला है। प्रसन्न हूँ।

प्रसन्न रहो, प्रसन्न रक्खो। कार्य करो, कार्य कराओ। बेकारी बुरी, अपने कार्य में लगी रहो। घीकवार खाओ, रोगियों को खिलाओ, समस्त शरीर पीड़ा जाती रहेगी। इससे उत्तम कोई अन्य औषधी मेरी समझ में नहीं आई है। सत्संग, अभ्यास, पोथियों का पाठ करो, कराओ। इससे शांति मिलेगी।

तुम बुद्धिमान हो, मूर्ख नहीं हो। तुम पर मालिक की दया है। तुम अपनाई हुई हो। सँभल कर रहो। समय नष्ट न हो। जीवन व्यर्थ न जाय। गया हुआ समय फिर नहीं आता।

संसार रहने का स्थान नहीं है। सब अपने २ कर्मों का फल भोगने को आते हैं। कर्म कटे और प्राण चले।

ऐसी कमाई कर चलो कि थोड़ी साधना से बहुत काम बने। अधिक परिश्रम की आवश्यकता भी नहीं है।

## [ ग़ज़ल पीरे मुग़ां साहिब ]

मैं के अन्दर देखता हूँ, जागुज़ीं तू ही तो है।
तू के परदे में छुपा, परदा नशीं तू ही तो है॥
मैं में तू है, तू में तू है, कौन है तेरे सिवा।
तू मुहीते जुज़्मो कुल है, आँ वईं तू ही तो है।
बज़्म आराइं है हरदम, बज़्म हुस्नो नाज़ की।
नाज़वीं, नाज़ आफ़रीं, और नाज़नी तू ही तो है॥
गड़ गया ज़ेरे ज़मीं और चढ़ चला बालाये चर्ख़।
अर्श और कुरसी है तू, फ़र्शे ज़मीं तू ही तो है॥
मैकदा 'पीरे मुग़ाँ' का, तुझसे कब ख़ाली रहा।
जामो मीना साग़रो ख़ुम में, मकीं तू ही तो है॥

---

## दातादयाल महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज का वार्षिक उत्सव ( राधास्वामी धाम बनारस में )

[ लेखक—परमदयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज ]

प्रति वर्ष श्री डा० रामकिशोरसिंह जी दातादयाल के भतीजे दातादयाल का वार्षिक उत्सव २५ दिसम्बर को मनाते हैं। वह सबको निमन्त्रण पत्र भेजा करते हैं। इस बार उनका निमन्त्रण नहीं मिला। महात्मा प्रयागलाल जी जो मेरे बजाय दाता की समाधि पर रहते हैं और उसकी देख भाल करते हैं, ने विश्वप्रेमी मुन्शीलाल जी को लिखा कि मैं कब आरहा हूँ। श्री मुन्शीलाल जी ने मुझे पूछा। मैंने उत्तर दिया कि मुझे वहाँ से कोई सूचना नहीं मिली है। मेरे हृदय में नाना प्रकार के बिचार उत्पन्न हुये।

पहिला विचार यह था कि सम्भवतः निमन्त्रण पत्र रास्ते में गुम हो गया हो।

फिर विचार हुआ कि सम्भवतः श्री रामकिशोरसिंह जी मुझसे अप्रसन्न हों। मनुष्य का हृदय एक ग्रन्थी है। इसमें विभिन्न प्रकार के भाव व विचार उत्पन्न होते रहते हैं। अप्रसन्नता का कारण जहां तक हो सकता है यह हो सकता है कि मैंने दाता-दयाल के पश्चात् उनकी शिक्षा को फैलाने और वास्तविकता और सचाई को प्रकट करने का कार्य किया है। सम्भव है वह उसको उचित न समझते हों।

संसार में गुरुआई और चेलाई एक प्रकार का रीत रिवाज हो गया है। गुरु और शिष्य दोनों ही अँधेरे में हैं। राधास्वामी दयाल ने, जिनकी शिक्षा के फैलाने वाले दातादयाल थे, स्पष्ट लिखा है:—

गुरु चेला व्यवहार जगत में झूँठा बरत रहा।
गुर तो मान प्रतिष्ठा चाहे, चेला स्वार्थ संग बँधा॥

चूँकि मैं गुरुआई नहीं करता हूँ, किन्तु जीवों के हित के लिये कार्य करता हूँ, इसलिये मैंने आज उसको पत्र लिखा है जिसका सारांश यह है:—

"आपका निमन्त्रण पत्र नहीं मिला, क्या आश्चर्य कि रास्ते में गुम होगया हो। परन्तु मैं दातादयालके रक्त सम्बन्धित सब सज्जनों के द्वार का एक कुत्ता हूँ। मालिक यदि कुत्ते को मारता और फटकारता है तो भी कुत्ता आज्ञाकारी रहता है। जब तक शरीर की शक्ति और आर्थिक अवस्था अनुमति देती है चाहे आप धक्के भी दें या मारें परन्तु आने से रुक नहीं सकता हूँ। अवश्य आऊँगा।"

मैंने इस कार्य से शारीरिक कष्ट और ज़क २ या बक २ के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त नहीं किया। कोई धन प्राप्त नहीं किया किसी से लेने देने का सम्बन्ध नहीं है। हां, यदि बाहर गया तो

कुछ मनुष्यों ने मत्था टेक दिया या फूल का हार चढ़ा दिया। फिर मेरे काम करने का कारण क्या है ?

मैं अत्यन्त मूर्ख, अनभिज्ञ और अज्ञानी मनुष्य था परन्तु; मेरे भीतर किसी अज्ञात वस्तु की खोज थी। उसकी खोज के क्रम में वर्षों रोने धोने, विरह अथवा तड़प के पश्चात् मेरा एक स्वप्न सन् १९०५ ई० में मुझे दातादयाल महर्षि जी के पवित्र चरणों में लेगया। मैंने उस पवित्र अस्तित्व में इस अज्ञात वस्तु परमतत्व आधार या मालिक या अपने ही आपको उस रूपमें माना और प्रेम किया। ऐसा विश्वास या श्रद्धा क्यों आई ? मौज, और क्या कहूँ। अथवा यों समझ लो कि माँ बच्चे को क्यों प्यार करती है। आपकी पवित्र विभूति ने मेरे ज्ञान, भ्रम और संशय के मिटाने के लिये अपनी चरण शरण प्रदान की और जीवन को सहारा दिया जिस कृतज्ञता को मैं कदापि भूल नहीं सकता हूँ। उनकी आज्ञानुसार चलने से और उनकी दया से अनुभव हो गया कि वास्तविकता तथा सार वस्तु क्या है। इस-लिये मैं उस पवित्र विभूति का आभारी हूँ।

कामी तरे क्रोधी तरे, पापी तरे अनन्त।
आन उपासक कृत घन, तरे न नाम रटन्त ॥

मैंने किसी प्रकार का कोई लाभ इस काम से नहीं उठाया। मैं यह काम क्यों करता हूँ ?

१—दातादयाल की आज्ञा जो मौखिक तो थी ही किन्तु इनका लेख जो मेरे नाम है वह सिद्ध करता है कि मेरे प्रति वह क्या काम दे गये।

२—मैं उस समय अपने आपको अपराधी समझता यदि मैं अपने लिये अथवा अपने परिवार के लिये कोई स्वार्थ रखता। मैंने इसीलिये डेरा, धाम आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रक्खा

बल्कि अपने लेखों के बदले भी किसी से कुछ नहीं लेता हूँ। फूल प्रशाद जो कोई ले आता है वह बांट दिया जाता है। यदि इस प्रशाद में से कोई दाना मैंने खा लिया तो मैं अपराधी नहीं हूँ।

मेरा पुत्र और स्त्री इस सत्संग के कार्य से प्रसन्न नहीं हैं विशेष रूप से स्त्री, क्योंकि प्रेमी हर समय घेरे रहते हैं। मुझे बक बक झक झक करनी पड़ती है और मेरे आराम में कमी आती है। उसको एक स्त्री के नाते से मेरे स्वास्थ्य का ध्यान होना अति आवश्यक है। इसलिए मैं अपने घर पर किसी को आने की आज्ञा नहीं देता हूँ।

३—मैंने जो कार्य किया है वह केवल इस भाव से किया है कि जीव माया ( बुद्धि ) और काल ( समय ) के प्रभावों से बच जांय और भेद या सच्ची समझ या ज्ञान को समझ कर दुख सुख से जो कि हमारा अपना ही कल्पित है से छुटकारा पा जायें। इस दृष्टि से इस रहस्य को खोला है या प्रकट किया है जिसको समयानुसार प्राचीन महापुरुषों ने गुप्त रक्खा या केवल संकेत मात्र किया था। यद्यपि मैं जानता हूँ कि इस भेद या रहस्य को समझना उस समय तक टेढ़ी खीर है जब तक कि मनुष्य समाहित चित न हो और साथ ही किसी पूर्ण पुरुष का सत्सङ्ग और उसकी दया या हित सम्मिलित न हो।

मेरे हृदय में बार-बार यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि तूने यह कार्य क्यों किया ?

प्र०—ऐ फ़क़ीर सोच मन में तूने काम यह क्यों किया ?

उ०—एक तो था हुक्म दाता का, दूसरे मन में छाई है दया।
भूल भरम अज्ञान अँधेरा, कलयुग में है छाय रहा॥
काल माया वश जीव घिरे हैं, नहीं बताता है कोई रास्ता।
रास्ता भी गर कोई बताता है, तो वाणी जाल से नहीं निकालता॥

प्रमाण मांगें पुस्तकों का, जीव विचारा इनमें है फंसता।
दया आई दिल के अन्दर काम किया, मौज निकालेगी अब
नया रास्ता
हम दर्द होकर ऐ दुनिया वालो खोल दिया जो राज था
सर बस्ता॥

मैं यद्यपि समझता हूँ कि समझने वाले कम हैं। दाता दयाल भी कहा करते थे कि फ़क़ीर! अभी संसार इस शिक्षा के समझने के योग्य नहीं है। केवल बीज डाला गया है। जिस प्रकार हिन्दुस्तान डैमोक्रेसी के अभी पूर्णतया योग्य नहीं हुआ किन्तु डैमोक्रेसी आगई और इसमें त्रुटियां हैं। इसी प्रकार संतों व पूर्ण पुरुषों की शिक्षा के समझे बिना भिन्न-भिन्न केन्द्र या मंडल बन गये और पारिस्परिक पक्षपात, घृणा द्वेष फैला हुआ है।

ऐ दाता! मुझे नहीं मालूम कि मैं ठीक हूँ या ग़लत। जैसा संस्कार आपने दिया कि शरीर त्यागने से पूर्व शिक्षा में परिवर्तन कर जाना, मैंने अपनी नीयत को सच्ची रख कर अपना अनुभव वर्णन किया है। यदि मैं ग़लती पर हूँ तो मेरा कोई अपराध नहीं। यदि तेरे परिवार वाले मुझसे विरोध रक्खें जो सम्भवतः मेरा अपना ही भ्रम हो तो मेरा कोई अपराध नहीं।

धाम या समाधि आदि सब श्री रामकिशोर सिंह जी की संपदा है। मेरी इच्छा है कि समाधि पूर्ण बन जाय। मैं किसी से क्या मांगू। मेरे लिये मांगना मृत्यु के समान है।

दस्ते सवाल लाखों ही ऐबों का ऐब है।
जिस हाथ में यह ऐब न हो दस्ते ग़ैब है॥

इन विचारों से मेरा अपना अन्तःकरण स्वच्छ है और मैं अपने आपको निर्दोष समझता हूँ। जो सज्जन दातादयाल के स्वरूप से सम्बन्ध रखते हैं वह यदि चाहें तो समाधि के पूर्ण बनने की ओर ध्यान दें। आगे उनकी मौज। बाबू वृजमोहन सहाय ने यह कार्य अपने जिम्मे लिया है। वह जानें उनका काम जानें।

---

# भाई भाई की बात चीत

( ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज )

मेरे इस १ मास (२०-१-५८ से २०-२-५८ तक) के दौरे में मुझे पूना दो दिन अपने छोटे भाई राय साहब सुरेन्द्रनाथ के पास ठहरने का अवसर मिला। कितना भी मनुष्य त्यागी वैरागी हो, रक्त का सम्बन्ध प्रेम को उत्पन्न कर देता है। वहाँ पर भी थोड़े सत्संगी आगये। भाई ने फर्श आदि बिछा दिया था। मैं वहाँ सत्संग कराना नहीं चाहता था किन्तु कर्म भोग वश विवश था। मैंने अपने जीवन का निज अनुभव कि जहां से चलकर जहाँ तक आया था उन सत्संगियों को बताते हुये कहा कि मित्रो ! जो कुछ है वह तुम्हारे अपने ही भाव विचार व संकल्प का परिणाम है। यदि पूर्ण गुरु मिल जाये और तुम उसकी बात को समझ लो तो तुम अपने ही आप अपने भाव विचार और संकल्प को परिवर्तन करने अपने शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन को अनुकूल बनाते हुए इतने ऊँचे जा सकते हो जहाँ तुम जीवन को हर प्रकार के दुख सुख से बचा सको। चूँकि यह कथन मेरे निज अनुभव के निजी उदाहरणों पर आधारित था इसलिए उनको और भाई को यह साहस नहीं हो सका कि मेरी बात का खंडन करें।

सत्संग के पश्चात् मेरे भाई ने मुझ से कहा कि भाई जी आपकी सत्यता, वास्तविकता, निष्कामता और निष्कपटता को मैं पहले से भी जानता था, किन्तु अब आपकी अवस्था एक नया रंग लाई है और मेरे तुच्छ विचार में आपकी इस स्वतंत्र वाणी और शिक्षा के लिए जन साधारण उसी प्रकार अयोग्य हैं जिस प्रकार भारत, वर्तमान स्वतंत्रता जो इसको मिली है योग्य नहीं है। भारत को समय से पहले स्वतंत्रता मिलने से बहुत कुछ कठिनाइयां उठानी पड़ रही हैं। संसार डिसीप्लिन सामाजिक रीतियों से बाहर जा रहा है। क्या इसी प्रकार आपकी शिक्षा से धार्मिक और साम्प्रदायिक जगत के प्राणी आपके भाव के रहस्य को न समझ कर त्रुटि न करेंगे।

मैं भाई के प्रश्न को सुनकर चकित हो गया। बात सच है। अधिकार और संस्कार का होना आवश्यक है। बहुत देर तक अपने अंतर में प्रवेश करके अपने आधार परमतत्व दाता दयाल में लय होकर अपने अस्तित्व को भूले रहा फिर होश आया। भाई को कहा—बेटा ! तुम्हारी बात सत्य है। चूँकि भारत को स्वतंत्रता समय से पहिले मिली है इसलिए यह मेरी शिक्षा भी समय से पहले इसलिए है कि भारत की यह स्वतंत्रता स्थिति रहे। मैं जानता हूँ कि धार्मिक और पंथों के नेता आचार्य और महात्मा अपने स्वार्थ वश और निजी पक्षपात के कारण सचाई को सुनने को तत्पर नहीं हैं किन्तु यदि शासन वास्तव में इस भारत को जो स्वतंत्रता मिली है उसे लाभ पहुँचाना चाहता है तो संतमत अर्थात् मनुष्य क्या है कैसे उत्पन्न हुआ, और कहां जाता है तथा आत्मिक ज्ञान की शिक्षा से जानकारी करना अत्यन्त आवश्यक है।

मेरी इच्छा है कि मैंने जो कुछ हनम कुन्डा (दक्षिण हैदराबाद) में एक दो दिन में वहां कहा है, जिसको मशीन में

भरा गया है उसको भारत के नेता, वह नेता नहीं जो नेता बने हुये हैं किन्तु वह नेता जो भारत को सुखी देखना चाहते हैं, उस कथन पर विचार करें और धार्मिक और साम्प्रदायिक जगत के महात्मा और गुरु पुस्तकीय ज्ञान को छोड़कर अपने निज अनुभव के आधार पर मेरे भावों पर विचार करें यदि उनकी आत्मा मेरे विचारों की सत्यता को स्वीकार करे तो धार्मिक साम्प्रदायिक और राजनीतिक जगत में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें।

मेरा अनुभव कहता हैं कि समय की परिस्थितियां संसार को परिवर्तन लाने के लिए विवश करेंगी और कर रही हैं। इसलिये विवश होकर मैं इस कर्म की ओर ढकेला जा रहा हूँ।

नोट–मुझे आशा है कि हनमकुण्डा के मेरे मित्र मेरे उन बिचारों को रैकर्डस ( Records ) का रूप देंगे जिससे कि साधारण स्थानों पर सुनाये जा सकें। वैसे तो मेरी मानसिक और आत्मिक धारें और लहरें उन भावों को संसार में फैला रही हैं। फिर भी स्थूल रूप में यह कार्य उन्हें करना चाहिये।

## परम दयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज का प्रवचन अलीगढ़ १८–२–५८

प्रथम प्रश्न यह है कि संत पना क्या है और असंत पना क्या है। संत पने में क्या गुण है। हम सन्तों के पास जाते हैं। मत्थे टेकते हैं। 'सन्तों का शब्द नवीन नहीं है प्राचीन काल से चला आता है। प्रश्न होता है कि हम संत के पास क्यों जायें ?

संत को मैंने क्या समझा है वह बताता हूँ। संत वह है जो सत में रहता है। फिर सत क्या वस्तु है ? इस पर विचार

करना है। पता नहीं ऋषियों ने, राधास्वामी दयाल ने तथा दाता-दयाल महर्षि जी आदि ने क्या समझा। जो मैंने समझा वह यह है कि जो वस्तु सदा और नित्य रहती है वही सत हो सकती है। शरीर है परन्तु नित्य नहीं रहता। कभी जला दिया जायगा। अन्य पदार्थों को भी देखते हैं। वह भी नाश होते रहते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि समस्त संसार मिथ्या है। इसमें परिवर्तन होता रहता है। संसार की कोई वस्तु सत नहीं है। फिर क्या सन्त वह है जो अपने अन्तर गुरू मूर्ति अथवा राम या कृष्ण की मूर्ति का ध्यान करके समाधिष्ट हो जाता है। क्या वह मूर्ति सदैव रहती है ? नहीं। इसलिये न मूर्ति बनाने वाला सत है न मूर्त्ति सत है। फिर मनुष्य जो नाना प्रकार के विचार करता रहता है क्या विचार सत है ? नहीं। विचार सदा एक समान नहीं रहता अतः विवेकी और विचारवान तथा विचार भी सत नहीं है। क्या तुमने संत उसे समझा है जो भक्त है, ध्यानी है अथवा चित्त की वृत्ति को एकाग्र करता है ? नहीं। वास्तव में सत वह वस्तु है जिससे तुम, तुम्हारा शरीर, मन और प्रकाश। प्रकट होता रहता है अर्थात् तुम्हारा आपा या निज स्वरूप सत है। जो व्यक्ति अपने आप में रहता है वही सन्त है। सत ही चित और आनन्द में बदल जाता है। यह सृष्टि भी सत की अन्श है। हमारी आत्मा कभी सत कभी चित और कभी आनन्द अवस्था में रहती है। हमारा सतपना, चितपना और आनन्दपना परिवर्तन शील है। जो परमतत्व, आधार या कूटस्थ है जिसमें कभी परिवर्तन नहीं होता, गुरू नानक उसे अकाल अडोल कहते हैं, राधास्वामी दयाल उसे अनामीपद कहते हैं। जो उसमें गया वह वही हो गया अतः सन्त वह है जो अपने निज स्वरूप में रहता है।

मेरा जीवन सत की खोज में व्यतीत हुआ उस सत में न

स्वामी न सेवक, न रचना न रचनापना है। अब मैं ६५ वर्ष के पश्चात् यह अनुभव कर रहा हूँ कि—

कहाँ है गुरु कहाँ है चेला। किसके साथ होता था मेला॥
यह सारा था मन का झमेला। ज्ञान पाया मिटा सब झमेला॥

जिस अवस्था में मैं अब पहुँचा हूँ वहां न अब रह गया गुरु का ध्यान है न ईश्वर, परमेश्वर का ध्यान है न योग न मुक्ति का ध्यान रह गया है। ५–७ वर्ष पहिले समय था कि जब मेरे विचार में यह आता था कि ऐ मन! तूने मुझे पतित कर दिया। भक्ति से गिरा दिया। योग से गिरा दिया। कहीं का नहीं छोड़ा किन्तु राधास्वामी दयाल की वाणी बारहमासा के बारहवें महिने में इस प्रकार है:—

नहिं ख़ालिक़ मख़लूक़ न ख़िल्क़त
कर्त्ता कारन काज न दिक्क़त॥
द्रष्टा दृष्टि नहिं कुछ दरसात।
वाच लक्ष नहिं पद न पदारथ॥
ज़ात सिफ़ात न अव्वल आख़िर।
गुप्त न परगट बातिन ज़ाहिर॥
राम रहीम करीम न केशो।
कुछ नहिं कुछ नहिं था सो॥

और कबीर साहब का भी एक शब्द इस प्रकार है—

दूर गवन तेरा हंसा हो, घर अगम अपार॥ टेक॥
नहिं वहां काया नहिं वहां माया, नहिं वहां त्रिगुन पसार।
चार बरन वहां हैं नाहीं, ना है कुल व्यवहार॥ १॥
नौ छः चौदह विद्या नाहीं, नहिं वहां वेद विचार।
जप तप संयम तीरथ नाहीं, नाहीं नेम अचार॥२॥
पांच तत्व नहिं उतपति भइलें, सो परलय के पार।
तीन देव ना तेतीस कोटी, नाहिं दसौ अवतार॥३॥

ऐसे शब्दों के सुनने से और सत्संगियों के अनुभव तथा निज अनुभव ने मुझे निश्चय करा दिया कि संसार का एक आधार है जिसका न कोई नाम है न रूप है। वह है, परन्तु वह क्या है मैं नहीं कह सकता। जो व्यक्ति उस अवस्था में रहता है वह संत है। ऐसा पुरुष, जो इस अवस्था में रहता है नाम दान कब देने लगा। वह चेले क्यों बनाने लगा? धाम क्यों बनाने लगा? यह रहनी का विषय है। यही कारण है कि मैंने न धाम बनाया न चेले बनाये। जबरन मुझे लोग गुरु मानें तो मेरा इसमें क्या दोष है। अमली दृष्टि से कहता हूँ कि क्या संत को यह गर्व हो सकता है कि वह हिन्दू है या मुसलमान, अथवा राधास्वामी है या नानकपंथी या कबीर पंथी। जिस संत को यह विचार है कि वह कबीर पंथी है या राधास्वामी है वह संत नहीं है।

जिस अवस्था का मैंने वर्णन किया है यह बहुत ऊँची है। जन साधारण ऐसे पुरुष से लाभ नहीं उठा सकते। जन साधारण के लाभ देने वाले साधु हैं जो गुरुमुख हैं। रास्ते पर चल रहे हैं। मार्ग पर चलने वाले ही डेरे या धाम बनाते हैं। इनके बिना काम नहीं चलता। जन साधारण के चलाने को साधुओं की आवश्यकता है जो जीवों को साधन कराते हुए उस अभीष्ट पद तक पहुँचाते हैं। प्रत्येक सम्प्रदायी संत नहीं बन सकता जैसे गुरु नानक संत थे। उन्होंने सुखमनि नहीं चलाया। राधास्वामी दयाल ने राधास्वामी मत नहीं चलाया। उन्होंने डेरा नहीं बनाया। हुजूर महाराज ( राय सालिगराम साहब ) की प्रार्थना पर सत्संग करा देते थे। कबीर साहब ने कोई डेरा नहीं बनाया। जब तक मनुष्य साधु, गुरुमुख या हंसगति में रहता है वह इस डेरा धाम आदि के बन्धन में है। वह सत्संग कराकर इस मार्ग पर चलाता है। कबीर साहब का कथन है कि सब साधु मेरे बड़े हैं। इन साधुओं में से जो सुख शान्ति का मार्ग दिखाते हैं उनका सम्मान

करता हूँ। जो साधु जगत का उपकार कर रहे हैं चाहे वह रामानुजी हैं चाहे नानकपंथी अथवा किसी और मार्ग के, उनमें से उत्तम वह हैं जो शब्द भेद को जानते हैं। शब्द सुनना और बात है किन्तु शब्द को जानना कुछ और है। बाहर वार्तालाप में सुन सब जाते हैं परन्तु वक्ता के भाव को कोई कोई समझता है। नेहरू जी तथा अन्य मान्य पुरुष व्याख्यान देते हैं उसे सुनते सब हैं किन्तु उनके भाव को थोड़े ही लोग समझ पाते हैं। अनहद वाणी को सुनते सब हैं परन्तु शब्द को परखने वाले बहुत कम हैं। अन्तर के शब्द का परखना क्या है ? जिस प्रकार के तुम शब्द सुनते हो उस प्रकार के शब्द का भाव मन में आता है। जैसे बाहर में वक्ता की वाणी के सारांश को समझ जाते हो प्रसन्न हो जाते हो। इसी प्रकार जो व्यक्ति शब्द ( अनहद ) सुनता है और उसमें लय हो जाता है तो जो गुण कर्म स्वभाव उसमें है वह तुम में आना चाहिए। कोई बीन का शब्द सुनता है कोई ओ३म् का शब्द सुनता है। यदि उसमें उस स्थान का गुण उत्पन्न नहीं हुआ और शब्द का प्रभाव ग्रहण नहीं किया तो वास्तव में वह शब्द नहीं था अथवा समझाने वाला गुरु नहीं था। इसलिए शब्द विवेकी बनो। बाहर के सत्संग में उसके अर्थ को ज्ञात करने का प्रयत्न करो।

मारू राग बजाते हो अथवा जब मिलटरी का बैंड बजता है तो सिपाही लड़ाई में कटिबद्ध हो जाता है। शपाशप तलवार चलाता है। जब क्विक मार्च का बाजा बजता है सिपाही तेज़ चलने लगता है। इसी प्रकार अन्तर का जैसा शब्द है वैसा ही तुम्हारा स्वभाव होना चाहिए अन्यथा तुम शब्द विवेकी नहीं। विवेकी होने को क्या चाहिए ? मैं बोल रहा हूँ, जो समझदार हैं वे शब्दों को नहीं किन्तु भाव को लेते हैं। इसी प्रकार जो अनहद शब्द सुनता है वह केवल उस धुनि को नहीं सुनता किन्तु

अपने आपको उसमें लय कर देता है। साधन सब करते हैं। उपदेश भी करते हैं किन्तु जो शब्द विवेकी पारखी हैं वह बहुत ऊँचे हैं। क्योंकि शब्द को सुनते २ जो वस्तु शब्द में लय हो जाने पर शेष रह जाती है वह परम तत्व है, इसलिए संत वह परमतत्व हो जाता है। अर्थात् शब्द सुनते २ अशब्द गति में आ जाता है। इस पर कबीर साहब का एक शब्द है—

जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरति समानी शब्द में, ताहि काल नहिं खाय॥

किसी बात को पूर्णतया समझना ही विवेक है। किसी बाहरी पुरुष के वचन को सुनकर मनन और निधिध्यासन करना है अन्तर के शब्द को सुन सुन कर लय होना है। बाहरी बचन के सुनने से समझ मिल गई और शान्ति मिल गई उसी प्रकार अन्तर के शब्द सुनने से आत्मा को शान्ति मिल जाती है। शरीर की शान्ति और वस्तु है और मन की शान्ति और वस्तु है। शरीर की शान्ति यह है कि मन को किसी और ओर लगा दो। तुम्हें उस ओर लगने का कोई पता नहीं अर्थात् शरीर की सुधि नहीं रही।

मन की शान्ति उस समय आयेगी जब मन प्रकाश स्वरूप हो जायगा। जब प्रकाश स्थूल प्रकृति में आता है तो तन मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार बनते हैं। हमारा प्रकाश खोपड़ी से निकल आता है तब मन, बुद्धि, चित, अहङ्कार आते हैं। जो प्रकाश में चला जाता है वह सोहंग पुरुष है यह दसवां द्वार कहलाता है।

मेरी वर्णन शैली भिन्न है चूँकि मैं स्पष्ट होकर वर्णन करता हूँ। तुम किसी साधु महात्मा का उपदेश सुनते हो। यदि उस पर श्रद्धा नहीं है तो फिर उसके बचनों पर कैसे विश्वास कर सकते हो। पहिले यह निश्चय होना चाहिए कि उस साधु या

महात्मा पर तुम्हारा विश्वास है। जब वह अपना कथन प्रारम्भ करे तो तुम्हारी दृष्टि उसके रूप और वाणी पर रहनी चाहिये। यदि ध्यान उसकी ओर नहीं है तो यह सतसङ्ग नहीं है।

लड़के से प्रश्न हल नहीं होता। वह पेचताव में है अध्यापक की ओर पूर्ण ध्यान से देखता है और उसके आदेशानुसार चलता है तो गुत्थी को हल कर लेता है और उसके भय से बच जाता है। मैं भगवान से मिलना चाहता था। ८४ लाख योनियों का भय था। मैं गुरु की आज्ञानुसार चला तो यह अनुभव में आया कि वह मालिक या भगवान मेरी ज्ञात (निज स्वरूप) है और वह भय जाता रहा, भ्रम मिट गया और शान्ति मिल गई। भेद समझ में आ गया। ऐसे ही डाक्टर के पास जाओ। तुम्हारा हाल सुन कर तुम्हें समझा देगा और उपाय बता देगा और रोग से उत्पन्न तुम्हारी चिन्ता दूर हो जायगी। बात मेरी समझ में नहीं आती थी किन्तु राधास्वामी मत में अब तक और वाह्य गुरु के सत्संगों से भेद का पता लग गया।

अन्तरीय शब्दों में लय हो कर देखा। जब उत्थान हुआ तो अनुभव हुआ, कि सुरत मन बुद्धि रूप और देह मिथ्या थे। उसी परम तत्व से उत्पन्न हुये और उसी में लय हो जाते हैं। जब सुरत शब्द में लय हो जाती है तो वहां न एक है न अनेक है एक अनेक का झगड़ा है। यह विवेक कैसे आयेगा? प्रेम से। किससे प्रेम? किसी सत् पुरुष से प्रेम करने से जो संत है वर्ना इस अवस्था तक पहुँच नहीं सकते। जब जब संत सतगुरु प्रगट हुआ करें। उनकी शरण लो। इसका अभिप्राय यह कि मेरे गुरु या तेरे गुरु पने के ख्याल को छोड़ दो किन्तु संत सतगुरु का सत्संग करो। स्वामी जी की वाणी है:—

दर्शन करे बचन पुनि सुने। सुन सुन कर नित मन में गुने॥
गुनि गुनि काढ़ लेय तरु सारा। काढ़ सार तस करे अहारा॥

कर अहार दुष्ट हुआ भाई। जग भव भय सब गई गवाई॥

वह सतगुरु तुम्हारी आमदनी का दशांश नहीं मांगेगी। जो संत ऐसा कहता है वह संत नहीं है न वह गुरु आई करता है किन्तु रोज़गार का व्यवहार करता है। संसार ने संत मत को नहीं समझा। यह एक व्यवसाय हो गया है।

गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन नाम हराम है, जाय पूछो वेद पुराण॥

'गुरु बिन देते दान' का अर्थ लोगों ने यह समझा है कि सिवाय गुरु के दूसरों को न देना किन्तु यह ग़लत है। इसका अभिप्राय यह है कि गुरु बहतर जानता है कि किस स्थान पर दान देने में आपकी भलाई है। जिसकी आमदनी १००) रु० है और चार लड़कियाँ जिस पर शादी करने को हैं वह दशांश कहां से दे देगा? जहां ऐसे व्यक्ति का दान लगता है वह बड़ा अनर्थ कारी होता है। इस भेद को मैं १९१९ ई० से जानता हूं। गुरु नाम है ज्ञान का समझ का इसलिये पैसे को सोच समझ कर खर्च करेगा।

शिष्य को ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय।
गुरु को ऐसा चाहिये, शिष्य का कछु न लेय॥

दातादयाल महर्षि (शिवव्रतलाल) जी महाराज बड़े समर्थ थे। मैं अपनी सारी आमदनी उनके अर्पण कर देता था। उन्होंने वह रुपया मेरे नाम से अलग बैंक में जमा कराया हुआ था जो एक बार २५००) रु० मुझे वापिस किया और सन् १९३३ ई० में २००००) बीस हज़ार रुपया मेरी स्त्री को वापिस किया। दातादयाल ने मुझे सन् १९३३ ई० में आज्ञा दी थी कि शिक्षा में परिवर्तन कर जाना। मैंने उनकी आज्ञानुसार सत्यता का प्रचार किया। इस कार्य में मेरा कोई निजी स्वार्थ नहीं है। न इसमें मेरा कोई दोष है। सन् १९४५ ई०में जब मैं बाबा सांवलेशाह

के दरबार में गया तो मैंने इस कार्य के करने में असमर्थता प्रगट की क्यों कि मैं सत्यता का पुजारी हूँ असत्य बात कही नहीं जाती। उन्होंने मुझे निर्भय होकर कार्य करने को कहा।

अब चाहे पंथ वाले बुरा माने या भला कहें मेरे जिम्मे तो यह ड्यूटी है और सत्यता प्रगट करने के लिये विवश हूँ।

हां, तो शिष्य को क्या करना चाहिये ? हर एक की परस्थितियां अलग अलग है। जो देता नहीं उसे मिलता भी नहीं। गुरु शिष्य से रुपया पैसा कपड़ा नहीं मांगता। वह वस्तु मांगता है जो उसकी सबसे प्यारी वस्तु है। फिर जैसी परस्थिति होती है उसके अनुसार आज्ञा दे देता है। गुरु ऐसा क्यों करता है ? इसलिये कि इससे जीवों का कल्याण होता है। मैंने देवीचरन जी को अपने लेखों को प्रकाशित करने का कार्य क्यों दिया है ? इसलिये कि इसके जीवन का सहारा है। इससे इसको ज्ञान हो जायगा। जब तक मुन्शीलाल जी 'मनुष्य बनो' और पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य जीवन में करते हैं वे करते रहे फिर मेरे सब लेखों और पुस्तकों का अधिकार देवीचरन जी को होगा। उद्देश्य यह है कि मनुष्य सत्संग में आकर विवेक प्राप्त करे। जो गुरू होंगे वे तुम्हारे हित की बात करेंगे।

तरुवर सरवर संत जन, चौथे बरसे मेह।
परमारथ के कारनें, चारों धारें देह॥

संसार में संत दुखी प्राणियों के दुख दूर करने को आते हैं। उनकी सेवा यह है कि गुरू अर्थात् ज्ञान को संसार में फैलाओ।

गुरु रूप न समझे कोय, भरम में पड़े अज्ञानी।
१—गुरू को मानुष जान कर, भक्ति का करें व्यवहार।

सो प्राणी अति मूढ़ है, कैसे जांय भव पार ॥
देह के बने अभिमानी ॥ १ ॥

२—गुरु को मानुष जानकर, सीत प्रसादी ले ।
सो तो पशु समान हैं, संशय में अटके ॥
[illegible] जानी ॥ २ ॥

[illegible] मानुष जान कर, मानुष करे विचार ।
[illegible] मूढ़ गंवार है, भूल रहे संसार ॥
मोह के फांस के ज्ञानी ॥ ३ ॥

४—गुरु को मानुष जानकर, भेड़ की चलते चाल ।
वह बन्धन को क्यों तजें, व्यापै माया काल ॥
पड़े योनि की खानी ॥ ४ ॥

५—गुरु नाम आदर्श का, गुरु है मन का इष्ट ।
गुरु आदर्श को ना लखे, समझो उसे कनिष्ट ॥
बात बूझे मनमानी ॥ ५ ॥

६—गुरु भाव घट में रहे, अघट सुघट की खान ।
जिसे समझ ऐसी नहीं, वह है मूढ़ महान ॥
नहिं गुरु रूप पिछानी ॥ ६ ॥

७—चेला तो चित में रहे, गुरु चित के आकाश ।
अपने में दोनों लखे, वही गुरु का दास ॥ ७ ॥
रहे गुरु पद घट ठानी ॥

८—सुरत शिष्य गुरु शब्द हैं, शब्द गुरु का रूप ।
शब्द गुरु की परख बिन, डूबे भरम के कूप ॥
नर जन्म जवानी ॥ ८ ॥

९—गुरु ज्ञान का तत्व है, गुरु ज्ञान का सार ।
गुरु मत गुरु गम जो लखे, फिर नहिं भव भयभार ॥
कमल जैसी गति आनी ॥ ९ ॥

१०–राधास्वामी सतगुरु संत ने, कही बात समझाय।
जो नहिं माने बचन को, उरझ उरझ उरझाय॥
कौन समझे यह बानी ॥ ८ ॥

अनेक प्रकार के दुखों से पीड़ित सहस्रों मेरे पास दुखिया आते हैं। मैं चाहता हूँ कि उनके दुख दूर हों। मैं उन नियमों को बताता हूँ। दुखों के कुछ मुख्य कारण जो मैंने समझे हैं यह हैं:

१–जिन व्यक्तियों ने बालिग होने से पहले अपने वीर्य को खोया है, चाहे वह लड़की है या लड़का, अर्थात् शारीरिक रूप से या मानसिक रूप से उनमें अशान्ति और मन में चंचलता का आना आवश्यक है।

यदि सुखी रहना चाहते हो तो ब्रह्मचर्य का पालन करो और अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खो।

---

## स्वास्थ्य के बिगड़ने का मुख्य कारण है

(१) **स्वाद**–ऊटपटांग खाना, जीभ के स्वाद के वशीभूत होना और उस पर नियंत्रण न होना (२) विषय विकार का स्वाद यदि इन पर नियंत्रण नहीं है तो मन अशान्त रहेगा और कोई गुरु तुम्हारी सहायता न कर सकेगा।

(२) **आमदनी से खर्च अधिक**–यदि इसको नियमित नहीं किया है या नहीं करते हो तो कोई नाम, गुरु या राम सुख नहीं पहुँचा सकता। इसलिए अधिक व्यय करना बन्द करो अपनी आय से अधिक व्यय न करो।

(३) **विषय विकार में फँसकर अधिक संतान उत्पन्न करना**–अधिक संतान उत्पन्न करने का समय नहीं है। समय

चदल गया है। अधिक संतान के पालन शिक्षा व विवाह शादियों के खर्चे से दुखी होंगे।

**(४) संतान से दुखी**–लोग संतान से इस कारण से दुखी होते हैं कि वह कहना नहीं मानती। कारण इसका यह है कि लोग मस्ती में, नशे में अथवा आपे से बाहर होकर भोग करते हैं तो फिर जिस भावों से संतान उत्पन्न की जायगी वह वैसी ही होगी। ऐसी दशा की उत्पन्न की हुई संतान यदि उद्दण्ड है तो इसमें दोष तो आपका ही है।

यहां यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि बच्चा जब मां के पेट में हो तब भोग न करो अन्यथा उस समय में माता के जैसे विचार होंगे संतान भी वैसी ही होगी। हमारे शास्त्र भी ऐसा कहते हैं और इसके उदाहरण भी है। अकबर जब अपनी मां के पेट में था तब उसकी मां पृथ्वी पर चित्र बना रही थी। जब हुमायूँ ने उससे पूछा कि क्या कर रही हो तो उसने उत्तर दिया कि मैं सोच रही हूँ कि मेरा लड़का इतने बड़े देश का बादशाह हो।

दूसरा उदाहरण मेरा अपना है। मेरे पिता जी रेलवे में सिपाही थे। मेरी माता वहाँ काटर्स में रहा करती थी। वहां स्टेशन मास्टरों को देखा करती थी। मन में इच्छा किया करती थी कि मेरा लड़का स्टेशन मास्टर हो जाये। मैं स्टेशन मास्टर हुआ। जब वह बड़े बड़े अफ़सरों को रेलवे सैलून में आता देखा करती थी तो यह सोचा करती थी कि मेरे लड़के भी ऐसे सैलून में बैठकर आवें। अतः एक बार मैं भी बंगलौर से दहली सैलून में आया और मेरे छोटे भाई राय साहब सुरेन्द्र नाथ रेलवे के चीफ ट्रैफिक मैनेजर हुये और सैलूनों में आते जाते थे।

**(५) हमारा अज्ञान**–करोड़ों धर्म संसार में बने हैं। लोग

भ्रम में पड़े हुये हैं। यथार्थ का ज्ञान न होने से दुखी होते हैं। मैं होशियार पुर में रहता हूं। अफरीका वासी एक व्यक्ति लिखता है कि मैं वहां प्रगट हुआ। इन्दौर वासी एक स्त्री कहती है कि बाबा जी (मैं) उसको मरते समय पालकी में ले जा रहा हूं कोई कहता है कि मैं उसको फल देगया अथवा दवा बता गया हूं परन्तु मैं इन स्थानों या इन व्यक्तियों के पास तक नहीं गया। फिर बात क्या है? यह मनुष्य का अपना ही श्रद्धा और विश्वास है जिसके अनुसार मेरा रूप उनको प्रगट दिखाई देता है। जो ज्ञान कि कबीर दे गये अथवा उपनिषद देते हैं यदि उसका प्रचार हो जाय तो पक्षपात घृणा और द्वेष आदि समाप्त हो जांय।

**(६) मन की चंचलता के दूर करने के साधन का न मिलना**–जब तक यह साधन नहीं मिलता, चंचलता या अशांति दूर नहीं हो सकती। वह साधन यह है कि मनुष्य उस अवस्था में आये जहाँ से मन उत्पन्न होता है। प्रकाश का स्थूल प्रकृति में आने से मन बनता है इसलिए अपने अन्तर प्रकाश को उत्पन्न करो। मन के दोषों को दूर करने को प्रकाश का साधन है। ज्योति स्वरूप, लाल रंग, नीलगूँ तथा स्वेत प्रकाश का ध्यान करो। परन्तु इस साधन से मनुष्य आवागमन से नहीं निकल सकता। संतों ने इसलिए अनहद शब्द का साधन बताया है जो निवृत्ति मार्ग है।

यहां तक संक्षिप्त में अशान्ति के मुख्य कारणों और उनके उपायों का वर्णन कर दिया है। अब परम पद की प्राप्ति के विषय में जिज्ञासुओं के हितार्थ कुछ बातें बता देता हूँ।

एक स्त्री है। कोई उसे माँ समझता है, कोई बहिन और कोई उसे पत्नि मानता है। प्रत्येक के हृदय में अलग अलग भाव होते हैं किन्तु स्त्री एक ही है। इसी प्रकार यदि तुम ध्रुव

पद को प्राप्त करना चाहते हो तो एक इष्ट बताओ और उसे पूर्ण मानो। जब अपने इष्ट को पूर्ण या परम तत्व मान कर सुमिरन ध्यान भजन करोगे तो अभीष्ट पद को प्राप्त कर लोगे।

(२) यदि कुछ न बन पड़े तो अपने आपको अपने इष्ट या मालिक के सुपुर्द कर दो। बिना इष्ट के परम पद तक पहुंच नहीं सकते। उदाहरण के तौर पर यों समझलो कि कामांग की पूर्ति के लिए स्त्री को इष्ट बनाना पड़ेगा अन्यथा काम की पूर्त्ति नहीं हो सकती।

(३) एक स्त्री है योवन में आई हुई है बड़ी सुन्दर है। उसका फोटो बाज़ार में लटका दिया जाय तो देखने वाले विचलित हो जायेंगे क्योंकि कामांग की पूर्ति का सामान उसमें विद्यमान है। एक महात्मा पूर्ण है उसके फोटो और दर्शन से उस अवस्था की प्राप्ति किसी सीमा तक अवश्य होगी।

कुछ करनी कुछ कर्म गति, कछुक पूर्व ले लेख।
देखो भाग्य कबीर का, लख से हुआ अलेख॥

मैं समस्त जीवन के संघर्ष के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि "होहि है वही जो राम रचिराखा।" यहाँ आकर सब ज्ञान ध्यान फेल हो जाते हैं। यह संकल्प था या विचार था कि संसार को सचाई या निज अनुभव बता जाऊँगा किन्तु यहाँ आकर फेल हो जाता हूँ। अब यह समझा है कि जो जिसके भाग्य में है वही उसे मिलता है।

मुझे उस परम तत्व या शक्ति के सामने समर्पण करना पड़ा है किन्तु मैं किसी को निराश नहीं करना चाहता। सूर्य की किरण को अन्त में वापिस पहुँचना है। हमको भी इसी प्रकार जाना है। जिस प्रकार मृत्यु अनिवार्य है वैसे ही हमारा वहां पहुँचना अनिवार्य है। चाहे एक जन्म लगे चाहे अनेक जन्म लगें किन्तु जाना अवश्य है।

तुम अपने आपको शुद्ध हृदय से उस परम तत्व के सुपुर्द करते रहो। वह मालिक रक्षा करता रहेगा। विश्वास रक्खो।

# मेरा भ्रमण अथवा यात्रा

( ले०—परम दयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज )

मैं अनेक प्रान्तों के नगरों से होता हुआ एक मास के पश्चात् होशियारपुर आया। आज अकेला सम्पूर्ण रात्रि उस परम तत्व ! परम अधारा ! दाता दयाल ! सच्चे साहब व सच्चे सांवले शाह के स्मरण में रहा। अपना प्रारम्भिक और वर्तमान अनुभव तथा बुद्धि-विचार का चित्र सम्मुख आया। विचार करता हूँ कि ऐ मेरे अस्तित्व तू क्यों बाहर गया था ? और जो कुछ तूने किया या वर्णन किया उसका क्या परिणाम निकला ? साथ ही यह विचार आया कि तूने ऐसा कार्य क्यों किया ?

अफ़सोस इज़हार बातिन का कर सकता नहीं।
मगर बिला इज़हार के भी रह सकता नहीं॥
चुप रहना चाहता हूँ मगर चुप भी रहा जाता नहीं।
मौज लिखा रही है मगर वह तत्व कहा जाता नहीं॥

इसलिए लेखनी हाथ में लेकर मनुष्य बनो पत्रिका के लिए कुछ लिख रहा हूँ। मैं ( मेरे अस्तित्व ) ने भिन्न प्रकार के रूप धारणा किये और भिन्न २ प्रकार के खेल खेले।

धार्मिक जगत में भक्त बना, योगी बना, ज्ञानी ध्यानी बना, साधू संत बना। ग्रहस्थ जीवन में पुत्र, पिता, भाई, पति, मित्र, शत्रु बनकर उन खेलों का अनुभव किया। शिष्य बना, गुरू कहलाया। अन्त में परिणाम क्या हुआ।

परिणाम यह निकला कि अस्तित्व ने अपने प्रत्येक प्रकार के अहंकार खो दिये। अब किसी प्रकार के खेल का अहंकार नहीं

रहा। किन्तु जीवन है और यह जीवन में अजीवन में परिवर्तित हो रहा है। समय आ रहा है अब इस जीवन का भी अन्त हो जायगा। फिर क्या क्या होगा ? नहीं कह सकता हूँ किन्तु अनुभव बताता है कि क्या होगा ?

दूर गवन तेरा हंसा हो घर अगम अपारा।
नाँ वहाँ काया नाँ वहाँ माया नाँ ब्रह्म पसारा ॥

इस अनुभव के आधार पर मौज आधीन यह कहता हूँ कि ऐ मनुष्य ! तू एक अपरमित दशा से मोक्ष अस्तित्व से उत्पन्न हुआ है और उसी में लय हो जायगा। यह जीवन की समस्त सोपानें परिवर्तन शील हैं। जब तक मौज के आधीन है इस जीवन को अचिन्त पने निर्भयता और प्रसन्नता पूर्वक व्यतीत कर। साथ ही अपने जीवन के खेलों में ममत्व और अहंकार को त्याग। त्याग से यह अभिप्राय नहीं कि तू जीवन से उदास हो जाय। वरन् जिस प्रकार एक मास की यात्रा में रहता हुआ तू अपने निज निवास स्थान पर आया है इसी प्रकार यह समझ ले कि यह जीवन भी एक यात्रा है। यात्रा समाप्त हुई और फिर अपना निवास स्थान वह क्या ? अपने आप में वापिस जाना है। किन्तु जब तक जीवन है इसको प्रसन्नता से व्यतीत कर।

मित्रो ! मैं भ्रम और संशय में था। उसकी खोज करता था जो खोज की सीमा से परे है। खोज का परिणाम यह निकला कि खोज भ्रम और अज्ञान सिद्ध हुई।

खोजत खोजत खो गये पाया नहीं अन्ता।
वृथा निकली खोज खोज से कुछ नहीं बनता ॥

इस खोज को मिटाने के लिये सतसंग, साधन और अभ्यास है और यही रहस्य मेरी समझ में आया है। किन्तु यहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन भी है और सुगम भी है। यदि किसी पूर्ण पुरुष का जो इन सोपानों को पार कर चुका हो निष्कपट और निष्काम

हो उसका सतसंग मिल जाय तो यह खोज शीघ्र ही समाप्त हो जाती है वरन् प्राणी अपने भ्रम, अज्ञान के वशीभूत होकर दुख सुख सहता रहता है और इसी अभिप्राय से मैं यात्रा पर गया था कि जन-साधारण को वास्तविकता और यथार्थ का ज्ञान हो और प्राणी अचिन्तता और प्रसन्नता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें। यदि प्राणियों को प्रसन्नता, अचिन्तता आदि प्राप्त हु हो तब तो मेरा यह कार्य अच्छा वरन् समय का नष्ट करना सिद्ध होगा।

## शब्द

गुरु के समान नहीं दूसरा जहान में। गुरु के समान०
शिव रूप जानों गुरु, विष्णु के स्वरूप हैं।
साक्षात् जानों ब्रह्म लिखा है पुराण में ॥ गुरु के०
यही वेद श्रुति कहती, गुरु बिना ज्ञान नहीं।
ज्ञान बिना मुक्ति कैसे, आई तेरे ध्यान में ॥ गुरु के०
ज्ञान बतावे गुरु, पाप से बचावे।
ब्रह्म से मिलावे गुरु; तुरिया पद के ध्यान में ॥ गुरु के०
सतगुरु की सेवा कीजे, झूँठ कपट त्याग दीजे।
ज्ञानी गुरु की शरण लीजे; मस्त रहो निज ध्यान में ॥ गुरु के०

## दातादयाल की होली

होली खेलूँ चरन गुरु लाग।
जग की मोह नींद नहीं व्यापे, सत संगत में जाग।
बचन, विलास, भजन और सुमिरन, गाऊँ अनहद राग ॥ होली०
मन पर करूँ पल पल असवारी, फेर निरोध की बाग।
गुरु के पंथ का किया पयाना, चित धर सहज विराग ॥ होली०

सेवक रूप में पद की सेवा, फगुआ भक्ति का मांग।
चिन्ता, भर्म की ओर न चालूँ, धर श्रद्धा अनुराग ॥ होली०
प्रेम भंग पी मस्त रहूँ नित, भरम विकार को त्याग।
राधास्वामी धाम की रहे परिक्रमा, यह मेरा अद्भुत फाग ॥ होली०

मन के मारे बन गये, बन तज बस्ती माँहिं।
कहें कबीर क्या कीजिए, यह मन बूझे नाहिं ॥
जोगी, जंगम, सेवड़ा, सन्यासी दुरवेश।
विना प्रेम पहुँचे नहीं, दुर्लभ सतगुरु देश ॥

## नन्दू भाई जी की साखी

अपनी तो सबको पड़ी, अपने अपने काज।
हमको तो सबकी पड़ी, सतगुरु राखो लाज ॥
हम सेवक हैं गुरू के, सबकी सेवा करें।
बोझ पराया आपना, सोच समझ सिर धरें ॥
सब बालक हैं गुरू के, क्या शत्रु क्या मीत।
सब की सेवा हम करें, धर गुरु चरनन प्रीत ॥
तारन आये सतगुरु, शब्द जहाज चढ़ाय।
सेवक गुरु की चाल चल, सबको पार लगाय ॥
राधास्वामी गायकर, प्रेम प्रीत उमगाय।
पंथ गुरू का निर्मला, अमल बिमल तर जाय ॥

## गुरु का संदेशा

सजनी गुरु का मिला संदेशा।
धीरज धरो शांति चित राखो, यह है निज उपदेशा।
माया काल की बस्ती तज कर, जाओ गुरु के देशा ॥ सजनी०
नहिं वहां शोक, न चिंता व्यापे, नहिं वहां कलह कलेसा।
नित आनन्द, विलास, चैन, सुख, धरो, हंस का भेसा ॥ सजनी०
नहिं वहां ब्रह्म, वहां विष्णु, नहिं वहां इन्द्र, गनेसा।

नहिं वहाँ वरुन, न वायू न अग्नि, नहिं जल, थल, नहिं सेसा ॥
नहिं वहां पिण्ड, नहिं ब्रह्मण्डा, गांव न बस्ती देसा ।
एक रस जीवन पद निरवाना, सभ्य न वहां भदेसा ॥ सजनी०
जो चल जाये राधास्वामी धामा, दुख सुख नहिं लवलेसा ।
भाग्यवती चल काल लोक तज, त्याग जगत का अँदेसा ॥ सजनी०

---

## म० शिवव्रतलाल जी महा० कृत शिवसाहित्य
## —प्रकाशन मंडल की अमूल्य पुस्तकें—
## जो मनुष्य बनो कार्यालय से मिलती हैं

| | | | |
|---|---|---|---|
| कानने ख्याल | १) | जैन वृतान्त | ॥=) |
| कथाकल्पद्रम | १) | सहज विचार | १) |
| कथना जलि | ॥।) | दयाल संहिता | ॥।) |
| गिरहदार मोती | १) | पंथ संदेश | १।) |
| दृष्टान्त सन्देश | ॥।) | कबीर जोग भाग १ उर्दू | १॥) |
| राजस्थान की ललित ललनायें | ॥।) | ,, ,, भाग २ उर्दू | १॥) |
| परमार्थ सुधार | ।॥) | गुटका शब्द संग्रह | ।) |
| आदर्श भारतीय वीरांगनायें | ॥) | राज भक्तिनि मीराबाई | ॥।) |
| ललित उपदेशान्जलि | ॥) | राज भक्त गोपीचन्द, सुदामा | १) |
| शिवसंहिता | १॥) | आदर्श भारतीय महिलायें | ॥।) |
| विष्णु संहिता | १॥) | शब्द सार | ॥।) |
| सुमेरु पर्वत | ॥) | शाही पति परायण | १॥) |
| शब्द गुन्जार भाग १ | ॥।) | कर्म सुधार | ॥।) |
| रूहानी प्राइमर | ॥) | हितोपदेश ॥।), शाहीभूत | १) |

# विषय तालिका


| सं० | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | साखी दयाल स्वरूप | नन्दू भाई | २ |
| २ | प्रार्थना | | ३ |
| ३ | चेतावनी | | ४ |
| ४ | कर्म भोग अथवा मौज | (परम द० फ़क़ीर साहब) | ६ |
| ५ | परमदयाल जी का पत्र | ,, ,, | १८ |
| ६ | स्मरण शक्ति किसी प्रकार दृढ़ हो | ( महर्षि जी ) | २२ |
| ७ | डेरे धाम और मसजिद | ( फ़क़ीर साहब ) | २८ |
| ८ | राजल पीरेमुग़ां | | ३२ |
| ९ | कर्म भोग अथवा मौज | (परमदयाल फ़क़ीर साहब) | ३३ |
| १० | दातादयाल जी का पत्र प्रिय राजमुनी के नाम | | ४१ |
| ११ | परमदयाल जी महाराज का प्रवचन | | ४३ |
| १२ | संत कृपा | | ५० |
| १३ | राजल डाक्टर राज साहब इगलासी | | ५२ |

# साखी दयाल स्वरूप नन्दूभाई

## दुख सुख कहां है ?

दुखिया सब संसार है जग में सुखी न कोय।
नन्दू सुख तो है वहां, जहाँ दुरमति गई खोय ॥ १ ॥
भय आतुर संसार है, निर्भय यहाँ न कोय।
नन्दू जब मन भय बसा, सुखी कोय कस होय ॥ २ ॥
मोर तोर में सब पड़े, मोर तोर संसार।
नन्दू जो इसको तजे, वह जन सदा सुखार ॥ ३ ॥
नाम रूप के जगत में, नाम रूप है दुख।
नन्दू यह व्यापे नहीं, तब प्रगटे मन सुख ॥ ४ ॥
दुख सुख द्वन्द स्वरूप है, द्वन्द में कहाँ है सार।
नन्दू द्वन्द को लांघकर, जा भव सागर पार ॥ ५ ॥
जहाँ आपा वहाँ आपदा, आपा दुख की खान।
नन्दू आपा को परख, त्याग मोह अभिमान ॥ ६ ॥
काम क्रोध मन में बसा, फिर क्यों सुख की चाह।
नन्दू अपनी परख कर, चल सतगुरु की राह ॥ ७ ॥
माया छाया एकसी, दोनों म नहिं सार।
नन्दू इनमें जो फँसे, सहे काल की मार ॥ ८ ॥

### कवित्त

गुरु सुन्दर रूप बसा मन में, मेरे मन भीतर इमरत बरसै।
गुरु करुणा सिन्धु दयाल गुरू, मोय काढ़ लिया जम के घर से ॥ १
गुरु अद्भुत रूप बसा मन में, अब और से ध्यान लगावत को।
जब अंतर बाजे बाज रहे, फिर बाहर साज बजावत को ॥ २
घट में अब शब्द की धुनि प्रगटी, फिर और रागिनी गावत को।
अपनी सतगुरु से लगन लगी, फिर दूजा देव मनावत को ॥ ३

मन वाणी कर्म सोध ले, शब्द सुरत अभ्यास।
जग में सुख आनन्द है, अन्त परम पद वास ॥